

क्या वैश्विक आर्थिक-सैन्य संकट का रूप लेगा अमेरिकी टैरिफ़ वार

स्वदेश कुमार सिन्हा

नब्बे के दशक में दो महत्वपूर्ण आर्थिक और राजनैतिक घटनाएँ हुई- पहली, सोवियत संघ के विघटन के बाद अमेरिका का दुनिया में एकमात्र बड़ी महाशक्ति के रूप में उभरना ; दूसरी, आर्थिक जगत में भूमण्डलीकरण की नीतियों का लागू होना ।

ये नीतियाँ विश्वबैंक, अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष और विश्व व्यापार संगठन द्वारा निर्देशित और समर्थित थीं, जिन पर अमेरिका का पूर्ण वर्चस्व है। इन नीतियों में माना गया कि दुनिया भर में पूँजी का मुक्त प्रवाह होगा, कोई भी राष्ट्रीय सीमा इसको रोक नहीं सकती। यही कारण है कि ऑटोमोबाइल, मोबाइल और टेक्सटाइल की बड़ी-बड़ी अमेरिकी और यूरोपीय कंपनियाँ भारत और चीन से लेकर बांग्लादेश-वियतनाम जैसे तीसरी दुनिया के देशों में अपना कारोबार ले गईं, जहाँ श्रम सस्ता था, श्रम कानून लागू नहीं होते थे। यहाँ श्रमिकों से कम मजदूरी पर आसानी से काम करवाया जा सकता था। जाहिर है, उनके मुनाफ़े की दर तेज़ी से बढ़ी। इसी वजह से चीन दुनिया भर में एक बड़े कारखाने के रूप में उभरकर सामने आया।

अब सवाल है कि क्या अमेरिकी राष्ट्रपति डॉनल्ड ट्रंप द्वारा दुनिया भर के देशों पर टैरिफ़ लगाने की घोषणा तथा संरक्षणवाद की नीतियों ने भूमण्डलीकरण की सारी अवधारणाओं को पलट दिया है ? जिन संरक्षणवादी आर्थिक नीतियों की अमेरिका खुद आलोचना कर रहा था, आज वह क्यों लागू कर रहा है ?

डॉनल्ड ट्रंप ने देश में होने वाले आयात पर 2 अप्रैल को टैरिफ़ लगाने की घोषणा की। ट्रंप ने इस दिन को अमेरिका का 'लिबरेशन डे' यानी मुक्ति दिवस करार दिया। यह वही क़दम था, जिसका उन्होंने राष्ट्रपति चुनाव प्रचार के दौरान वादा किया था और अब उसे पूरा किया। राष्ट्रपति ट्रंप ने कहा कि वे दुनिया भर की कंपनियों को यह साफ़ संदेश देना चाहते हैं कि अगर वे अमेरिका में उत्पादन नहीं करती हैं, तो उन्हें वहाँ अपने उत्पाद बेचने पर भारी शुल्क देना होगा। हालाँकि भारी विरोध को देखते हुए ट्रंप ने अपनी अधिकांश टैरिफ़ योजनाओं को स्थगित कर दिया। फिलहाल अमेरिका में होने वाले अधिकांश आयात पर 10 प्रतिशत टैरिफ़ लागू है, लेकिन इस बीच वैश्विक अर्थव्यवस्था को काफ़ी नुकसान पहुँच चुका था। ट्रंप ने इन टैरिफ़ पर 90 दिनों के लिए अस्थायी रोक लगा दी है, इसलिए कई देश जुलाई में ख़त्म होने वाली इस समय सीमा से पहले अमेरिका के साथ व्यापार समझौता करने की कोशिश में जुट गए हैं, क्योंकि अगर समझौता नहीं हुआ, तो उन देशों से अमेरिका को भेजे जाने वाले सामान पर भारी शुल्क लग सकता है।

ट्रंप की 'अमेरिका फ़र्स्ट' नीति से दुनिया में आर्थिक संबंध ही नहीं, बल्कि सभी तरह के संबंध पेचीदा हो जाएँगे। अब विदेशी सरकारों को अमेरिका के सामने ऐसा प्रस्ताव रखना होगा, जो इस टैरिफ़ से बेहतर साबित हो। अमेरिकी संविधान के मुताबिक देश की अंतरराष्ट्रीय व्यापार नीति तय करने का अधिकार संसद को है, न कि राष्ट्रपति को। लेकिन राष्ट्रपति ट्रंप ने विदेशी व्यापार में असंतुलन का हवाला देकर इसे 'राष्ट्रीय आपातकाल' घोषित किया और राष्ट्रपति आदेश के ज़रिए टैरिफ़ लागू कर दिया।

राष्ट्रपति ट्रंप के फ़ैसले को संसद से भी चुनौती मिल सकती है, लेकिन उनके फ़ैसले के विरोध में संसद के दोनों सदनों में

समर्थन जरूरी होगा। डेमोक्रेट सांसद इस फैसले के खिलाफ हैं, लेकिन रिपब्लिकन सांसद भी इससे पूरी तरह संतुष्ट नहीं हैं। एक तो उन्हें लगता है कि इस फैसले को लागू करने की प्रक्रिया सही नहीं है और साथ ही इसके खिलाफ बाहरी दबाव भी आ सकता है।

अनेक सांसदों का कहना है कि उनके चुनाव क्षेत्र की जनता और कंपनियों से फोन आ रहे हैं, क्योंकि इन फैसलों का उन पर सीधा असर पड़ सकता है। वे राष्ट्रपति ट्रंप पर इन नीतियों पर दोबारा सोचने के लिए दबाव बना सकते हैं, इससे अमेरिका में रोज़मर्रा की चीज़ें महँगी हो सकती हैं। ट्रंप मानते हैं कि इस फैसले से शुरू में लोगों को कुछ परेशानियाँ होंगी, लेकिन भविष्य में फ़ायदा होगा। हालाँकि जब जरूरी सामान महँगा हो जाएगा और मकान की ईएमआई बढ़ जाएगी, तो आम लोगों के लिए इसे बर्दाश्त करना मुश्किल हो सकता है और ट्रंप के लिए इस नीति को बनाए रखना एक चुनौती बन सकता है। उनके इस फैसले के खिलाफ अमेरिका के लगभग सभी राज्यों में बड़े विरोध प्रदर्शन भी हुए हैं।

ट्रंप ने चीन से आयात होने वाली वस्तुओं पर 100 प्रतिशत से भी अधिक टैरिफ़ लगा दिया है और जवाब में चीन ने भी अमेरिका से आने वाली चीज़ों पर भारी शुल्क लगाया है। दोनों देशों के बीच इस व्यापारिक टकराव से उनके आपसी व्यापार के पूरी तरह रुकने का खतरा पैदा हो गया है, वहीं दूसरे देश भी असमंजस में हैं कि उन्हें अमेरिका का साथ देना है या नहीं। अमेरिका ने अपने बाकी व्यापारिक साझेदारों को भी सख्त संदेश दिया है। अमेरिकी प्रशासन का उद्देश्य अमेरिका में उत्पादन बढ़ाना और देश में बेरोज़गारी की समस्या का हल निकालना है, लेकिन समस्या यह भी है कि कई अमेरिकी कंपनियों को अन्य देशों से कच्चा माल आयात करना पड़ता है। उन देशों से आयात पर टैरिफ़ बढ़ने से उनके लिए बाज़ार में सामान किफ़ायती दाम पर बेचना मुश्किल हो जाएगा। चीन के अलावा कई देश और कंपनियाँ अमेरिका के साथ व्यापार समझौते का प्रयास कर रही हैं।

वास्तव में इस टैरिफ़ वार में सबसे बड़ा मुद्दा अमेरिका बनाम चीन है, क्योंकि चीन अमेरिका के इस रवैये के खिलाफ़ डटकर खड़ा है और एक तरह से इस मामले में दुनिया का नेतृत्व करता दिख रहा है। चीन और अमेरिका दुनिया की दो बड़ी आर्थिक शक्तियाँ हैं। अगर इस समस्या का हल नहीं निकला तो इन दोनों देशों के बीच व्यापार ठप हो सकता है, जिससे दोनों की अर्थव्यवस्थाओं को भारी नुकसान होगा। बीजिंग स्थित एक चीनी थिंक टैंक सेंटर फॉर चाइना एण्ड ग्लोबलाइजेशन के उपाध्यक्ष विक्टर गाओ एक इंटरव्यू में कहते हैं, 'चीन कभी भी अमेरिका या किसी अन्य देश को अपने ऊपर हावी होने नहीं देगा। न वो उनकी धमकी से डरेगा। चीन मानता है कि अगर ट्रंप को उसने एक इंच की जगह दे दी, तो वह एक फुट माँगने लगेंगे। अगर चीन उनकी धौंस में आ जाए, तो उनकी माँग बढ़ती ही जाएगी, इसलिए मुझे लगता है, चीन यह मानता है, कि परिणाम चाहे जो हो, अमेरिका के दबाव या धमकी के सामने कभी झुकना नहीं चाहिए।'।

इस व्यापारिक युद्ध या टैरिफ़ की जंग में अधिक नुकसान इनमें से किस देश को होगा? यह बहस का विषय है। विक्टर गाओ की राय है कि यह नफ़ा-नुकसान से अधिक सिद्धांतों का मसला है। ट्रंप द्वारा चीन सहित दुनिया के अन्य देशों पर लगाए गए टैरिफ़ अनुचित हैं और ये विश्व व्यापार के नियमों के खिलाफ़ हैं। इससे न तो अमेरिका में रोज़गार बढ़ेगा, बल्कि आम अमेरिकी नागरिकों को ही नुकसान होगा।

चीन इसलिए भी इस मुद्दे पर अमेरिका से समझौते के पक्ष में नहीं दिखता, क्योंकि उसे लगता है कि अमेरिकी जनता इस मुद्दे पर खुद अपनी राय बनाएगी। अमेरिका को यह टैरिफ़ विदेशी कंपनियाँ नहीं चुकाएँगी, बल्कि अमेरिकी ग्राहकों को इसका भुगतान करना पड़ेगा।

अमेरिकी राष्ट्रपति यह कहकर कि उन्होंने इतना धन टैरिफ़ से हासिल कर लिया है, या तो खुद को बहला रहे हैं या अमेरिकी जनता को गुमराह कर रहे हैं। हाँ! सरकार ने टैरिफ़ वसूल किया है, लेकिन यह एक तरह से अमेरिकी लोगों पर टैक्स लगाने के समान है जो अमेरिकी जनता चुका रही है। चीन हमेशा ही एक बड़ी आर्थिक शक्ति रहा है, इसलिए वह इस समस्या से उबर आएगा। एलन मस्क भी कह चुके हैं कि सदी के मध्य तक चीन की अर्थव्यवस्था अमेरिकी अर्थव्यवस्था से दोगुनी बड़ी हो जाएगी। अमेरिका के इस कदम के बाद उभरती अर्थव्यवस्थाओं के लिए चीन एक विकल्प के रूप में उभर रहा है। लंबे समय से अमेरिका के सहयोगी रहे जापान और यूरोपीय संघ के देश भी ट्रंप के टैरिफ़ लगाने के फैसले से सदमे में हैं। वे भी आत्मनिर्भर होने और दूसरे विकल्पों के बारे में सोचने लगे हैं।

वास्तव में राष्ट्रपति ट्रंप सिर्फ अंतरराष्ट्रीय व्यापार को नया रूप नहीं देना चाहते, बल्कि उनके कई अन्य उद्देश्य भी हैं, जिनके लिए वे अलग-अलग हथकंडे अपना रहे हैं। टैरिफ इन्हीं में से एक है, जिसके जरिए वे दूसरे देशों को डराना चाहते हैं, इसलिए अमेरिका धमकियाँ दे रहा है और अपनी सैन्य शक्ति का प्रदर्शन कर रहा है। वो टैरिफ को हथियार बनाकर विश्व व्यवस्था को बदलना चाहता है, टैरिफ से पैसे उगाह कर वह अपने कर्ज का भार कम करना चाहता है। अमेरिका का 36 खरब डॉलर का कर्ज इस पूरी कहानी का एक केंद्रीय मुद्दा है। यह कर्ज अब अमेरिका की पूरी अर्थव्यवस्था से भी बड़ा हो गया है। इस कर्ज का लगभग एक खरब डॉलर के बराबर का हिस्सा चीन ने खरीद रखा है। इसकी एक वजह यह है कि चीन अमेरिका को ज्यादा निर्यात करता है और उससे आयात कम करता है। निर्यात का भुगतान डॉलर में होता है, जिससे चीन के पास बड़ी मात्रा में डॉलर जमा हो गया है। इस कारण डॉलर महंगा हो गया है, नतीजतन अमेरिकी सामान भी महंगा हो गया है और अमेरिका अंतरराष्ट्रीय बाजार की प्रतिस्पर्धा में पिछड़ रहा है। अमेरिका डॉलर को कुछ सस्ता बनाना चाहता है।

अमेरिका और चीन के बीच आयात-निर्यात इसकी एक दूसरी वजह भी बताई जा रही है। ऐसी अटकलें हैं कि मारा-लागो संधि नाम का एक दस्तावेज तैयार किया गया है। अफवाह है कि यह राष्ट्रपति ट्रंप की आर्थिक योजना के केंद्र में है। इसमें टैरिफ के जरिए उन देशों पर दबाव बनाने की योजना है, जिन्होंने अमेरिका में कर्ज के माध्यम से निवेश कर रखा है, ताकि वे अपने निवेश के बदले कम रकम लेने को तैयार हो जाएँ। इससे अमेरिका के कर्ज का बोझ कुछ हल्का हो सकता है, लेकिन दूसरे देश इससे चिंतित और सतर्क हो गए हैं।

ट्रंप की आक्रामकता और भारी टैरिफ लगाने के फैसले को लेकर यूरोपीय नेता अब एकजुट हो रहे हैं। वे अब आपस में सैनिक और व्यापारिक सहयोग बढ़ाने पर विचार करने लगे हैं। दूसरी ओर चीन भी उन देशों में अपना प्रभाव बढ़ाएगा, जो अमेरिकी सहयोग का विकल्प खोज रहे हैं। जापान अब तक अमेरिका के करीब रहा है और वह एशिया में चीन का वर्चस्व बढ़ने नहीं देना चाहता, लेकिन अमेरिका के प्रति उसका भरोसा भी अब कम हो गया है।

अमेरिका ने अपने प्रतिद्वंद्वियों पर ही नहीं बल्कि सहयोगी देशों से आयात पर भी भारी टैरिफ लगाने के फैसले को फिलहाल टाल दिया है, लेकिन यह केवल शक्ति प्रदर्शन नहीं, बल्कि अमेरिका के दीर्घकालिक उद्देश्यों का हिस्सा है। राष्ट्रपति ट्रंप अमेरिका का कर्ज घटाना चाहते हैं। साथ ही वे यह भी चाहते हैं कि अमेरिकी कंपनियाँ विदेशों में कारखाने लगाना बंद करें और देश के भीतर उत्पादन बढ़े, अमेरिका को होने वाला आयात घटाया जाए। हालाँकि उनका मुख्य निशाना चीन है, लेकिन इस नीति से अमेरिका के अन्य व्यापारिक साझेदार भी प्रभावित हो रहे हैं।

जब भूमण्डलीकरण की नीतियाँ लागू हुईं, तब यह कहा गया कि यह विश्व पूँजीवाद को नयी जीवनशक्ति देगा, मगर ऐसा नहीं हुआ। इन नीतियों के लागू होने के बाद भी अर्थव्यवस्था में लगातार आ रही मंदियों ने इस धारणा को गलत साबित किया। दुनिया भर में अमीरों की सम्पत्ति बहुत तेजी से बढ़ी और इसके बरक्स गरीबी और असमानता भी तेजी से बढ़ी। यह प्रक्रिया विकसित, विकासशील और गरीब देशों में एक साथ ही घटित हुई। टैरिफ वार इस संकट को और बढ़ाएगा, इसका गंभीर प्रभाव केवल तीसरी दुनिया के देशों पर ही नहीं, बल्कि यूरोपीय देशों और अमेरिका पर भी पड़ेगा। यह भी आशंका है कि यह संकट क्षेत्रीय और बड़े युद्धों का भी रूप ले सकता है, हालाँकि ये सभी आशंकाएँ अभी भविष्य के गर्भ में छिपी हुई हैं।

(लेखक स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं)